मङ्गल प्रज्ञा

भाग: 1

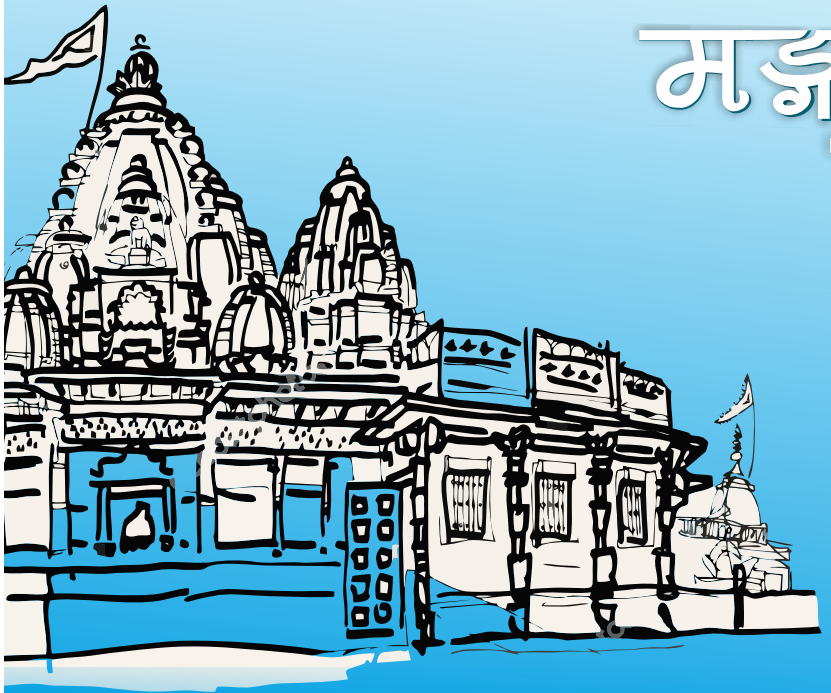

प्रकाशक:

मङ्गल विद्यापीठ

तीर्थधाम मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-२०४२१६ (अलीगढ़) उत्तरप्रदेश

ॐ

॥ नमः श्री सिद्धेभ्यः ॥

मंगल प्रज्ञा

(प्रथम भाग)

प्रकाशक :

मङ्गल विद्यापीठ

तीर्थधाम मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट

सासनी - 204216, हाथरस (उत्तरप्रदेश) भारत

mob. : 91-8191900042, e-mail : mangalvidyapeeth@gmail.com

हमारे जीवनशिल्पी
धर्मपिता
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
के कर-कमलों में
सविनय समर्पित!

हम हैं आपके,
नन्हें-मुन्नें ज्ञायक

प्रस्तावना

जैनदर्शन में तीर्थंकर, धर्म के संस्थापक नहीं होते, वे तो प्रवर्तक होते हैं, प्रचारक होते हैं।

प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर, शासननायक भगवान महावीर तक यह प्रवाह निरंतर चलता रहा। महावीर भगवान के निर्वाण होने के पश्चात् कुछ केवलियों और श्रुतकेवलियों ने इसी शृंखला को आगे बढाया। विशेष ज्ञानियों का अभाव होने पर, मुनि परंपरा में यह विकल्प हुआ कि पंचम काल के अंतपर्यंत यदि जिनशासन को सुरक्षित करना है, तो सत्यमार्ग को जन-जन तक पहुँचाना होगा और इसके लिए जिनागम को लिपिबद्ध करना होगा। इसीलिए पुष्पदन्ताचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य आदि वीतरागी महर्षियों ने समय-समय पर वीतरागता के पोषक ग्रन्थों के लेखन का दुरूह कार्य किया।

काल के ओघ से जब यह वाणी, मंदबुद्धियों को समझने में दुर्गम हुई, तब उन ग्रन्थों की टीकाएँ लिखी गयीं। वीतरागी संतों का भी विरह-सा होता देखकर, कविवर पण्डित बनारसीदासजी, आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी जैसे समर्थ विद्वानों ने उन टीकाओं का सरलीकरण किया। इसे भी सरल-सुगम करने हेतु आज के परिप्रेक्ष्य में गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने सरलतम शब्दों में 45 वर्षों तक लगातार अमृतवर्षा की, जिससे प्रेरित होकर आज हजारों विद्वानों की सृष्टि हुई। हमारे ऊपर इन सबके अनंत उपकार हैं।

मङ्गल विद्यापीठ को यह विकल्प आया कि विद्वानों का योग सबको हो, यह जरूरी नहीं है। आज विषयों की अन्धी भाग-दौड़ के इस काल में समय की अनुकूलता मिलना दुर्लभ है। बीमारी आदि से ग्रस्त होने के कारण भी साधारणजन शास्त्र-सभाओं में जाकर, स्वाध्याय का लाभ नहीं ले सकते।

किसी सुयोग से स्वाध्याय के समय की अनुकूलता भी हो तथा स्वास्थ्य भी ठीक हो, पर चारों अनुयोग के ज्ञाता विद्वान की प्राप्ति दुर्लभ है।

मङ्गल विद्यापीठ ने निर्णय किया कि ऐसा कोई सर्वजनहिताय उपक्रम प्रारम्भ किया जाए; जिसमें लघु वय से ही मुमुक्षुता को योग्य पोषण मिलता रहे। देश-विदेश के किसी भी कोने में बैठकर, कोई भी उपासक, समस्त विषयों का सांगोपांग अध्ययन कर सके और उसकी समय-समय पर परीक्षा भी होती रहे। परीक्षा के लिए लिखित या On-Line का भी विकल्प रहे। साथ-साथ समय-समय पर श्रोताओं की जिज्ञासानुसार, नियमित अथवा प्रासंगिक कक्षाओं का Video Conference द्वारा भी आयोजन हो।

मङ्गल विद्यापीठ का यह भी भाव है कि एक **'मङ्गल जिज्ञासा'** उपक्रम चले, जिसमें समय-समय पर श्रोताओं से प्रश्न पूछे जाएँ और उत्तरदाताओं को पुरस्कृत भी किया जाए। साथ ही एक **'मङ्गल समाधान'** उपक्रम चले, जिसमें श्रोताओं की जिज्ञासाओं का तत्काल समाधान मिलने का यह केन्द्रबिंदु बने, जिसमें किसी भी अनुयोग की शंकाओं का निराकरण, आगम तथा युक्ति से हमारी विद्वत् मंडली के सदस्यों द्वारा किया जाए। हम चाहते हैं कि ज्ञान के प्रचार-प्रसार के अभियान के इस यज्ञ में आप भी हमारे सहभागी बनें।

इन भागों को बनाने में हमने पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर आदि संस्थाओं द्वारा प्रकाशित पुस्तकों का सहयोग लिया है। हम उसके लिए सभी के प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
	भगवान बनेंगे	1
1	णमोकार महामन्त्र	2
2	मंगलोत्तमशरण-पाठ	6
3	तीर्थंकर	8
4	देवदर्शन	13
5	स्व-पर भेद-विज्ञान	17
6	दिनचर्या	20
7	तीर्थंकर ऋषभदेव	24
8	मेरा धाम (गीत)	29

संकल्प—

भगवान बनेंगे

सम्यग्दर्शन प्राप्त करेंगे।
सप्त भयों[१] से नहीं डरेंगे॥

सप्त तत्त्व का ज्ञान करेंगे।
जीव-अजीव पहिचान करेंगे॥

स्व-पर भेदविज्ञान करेंगे।
निजानन्द का पान करेंगे॥

पंच प्रभु का ध्यान धरेंगे।
गुरुजन का सम्मान करेंगे॥

जिनवाणी का श्रवण करेंगे।
पठन करेंगे, मनन करेंगे।

रात्रि भोजन नहीं करेंगे।
बिना छना जल काम न लेंगे।

निज स्वभाव को प्राप्त करेंगे।
मोहभाव का नाश करेंगे॥
रागद्वेष का त्याग करेंगे।

और अधिक क्या ? बोलो बालक!
भक्त नहीं, भगवान बनेंगे॥

१. इहलोक भय, परलोक भय, मरण भय, वेदना भय, अनरक्षा भय, अगुप्ति भय और अकस्मात् भय।

पाठ 1

णमोकार महामन्त्र

अरहंत परमेष्ठी

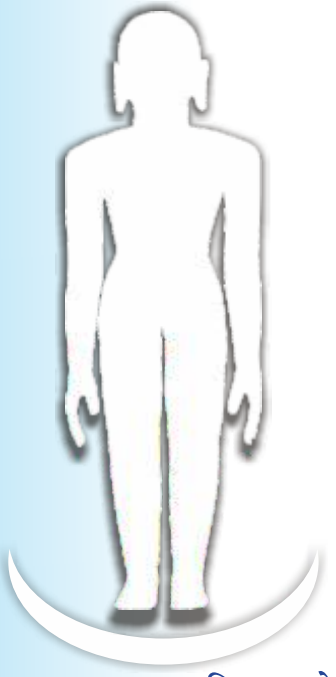

सिद्ध परमेष्ठी

मङ्गलार्थियो ! जिसका विश्वासपूर्वक, शुद्धता से पाठ करनेमात्र से कार्य की सिद्धि हो जाती है, उसे मन्त्र कहते हैं। मन्त्र में अनन्त शक्ति होती है।

आचार्य पुष्पदन्त ने षट्खण्डागम ग्रन्थ के मंगलाचरण के रूप में यह गाथा-छन्द लिखा है –

णमो अरहंताणं,
णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं,
णमो लोए सव्व साहूणं॥

इसका अर्थ :- लोक में स्थित, सब अरहन्तों को नमस्कार हो; सब सिद्धों को नमस्कार हो; सब आचार्यों को नमस्कार हो; सब उपाध्यायों को नमस्कार हो, और सब साधुओं को नमस्कार हो।

इस महामन्त्र की अपनी विशेषता है कि इसमें किसी भी वस्तु की माँग नहीं की गयी है।

आचार्य परमेष्ठी

उपाध्याय परमेष्ठी

साधु परमेष्ठी

णमोकारमन्त्र की महिमा

एसो पंचणमोयारो सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होहि मंगलं॥

यह पंच नमस्कारमन्त्र सब पापों का नाश करनेवाला है तथा सब मंगलों में प्रथम (पहला) मंगल है।

यह मन्त्र, मोह-राग-द्वेष का अभाव करनेवाला और सम्यग्ज्ञान प्राप्त करानेवाला है।

अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु—ये पंच परमेष्ठी कहलाते हैं। जो जीव इन पाँचों परमेष्ठियों को पहिचान कर, उनके बताए हुए मार्ग पर चलता है, उसे सच्चा सुख प्राप्त होता है। हमें इस मन्त्र का निरन्तर स्मरण करना चाहिए। यह मन्त्र जैनियों की पहचान है। यह मन्त्र, अनादि-निधनमन्त्र, अपराजित-मन्त्र, नमस्कारमन्त्र, मूलमन्त्र, प्रणवमन्त्र आदि नामों से जाना जाता है।

अकलंक तथा निकलंक की पहचान करने के लिए, जब नालन्दा विश्वविद्यालय में आधी रात को, बर्तनादि फैंककर भयंकर ध्वनि की गई थी, तब

इन भाईयों का इसी मन्त्रोच्चारण से जागरण हुआ था और इसी से इनकी जैन के रूप में पहचान हुई थी।

पार्श्वकुमार ने जलते नाग-नागिन के जोड़े को यही णमोकारमन्त्र सुनाया था, जिससे हुए शुभभावों के कारण उन्हें देवपर्याय प्राप्त हुई थी।

अनन्तमती ने इसी मन्त्र के प्रभाव से अपने शील की रक्षा की थी।

निष्कर्ष - ये पाँचों परमेष्ठी पद, आत्मा के विकास की दशाएँ हैं। अहो! मैं भी इन दशाओं की प्राप्ति करके, आत्म-कल्याण करूँगा।

प्रश्न —

1. णमोकारमन्त्र शुद्ध बोलिए।
2. इस मन्त्र में किसे नमस्कार किया गया है ?
3. इस मन्त्र के स्मरण से क्या लाभ है ?
4. पंच परमेष्ठियों के नाम बताइए।
5. सच्चा सुख कैसे प्राप्त होता है ?

आगर्भ दिगम्बर की प्रतिभा

जिनसेन अपनी 5 वर्ष की बाल्यावस्था में अपने मित्रों के साथ खेल रहे थे। जो एक दूसरे को ढूँढ़कर छू लेता, वही जीत जाता। जिनसेन ने कहा - जो मुझे छू लेगा उसे आज का अपना भोजन दे दूँगा। किसी लड़के ने उनका हाथ छू लिया तो जिनसेन ने कहा - यह तो तुमने हाथ छुआ मुझे कहाँ छुआ है ? इस प्रकार किसी ने कोई अंग छुआ, किसी ने कोई। सबको एक ही उत्तर मिला मुझे छुओ, यह तो सब शरीर है। छूना तो दूर रहा, मुझे देख भी नहीं सकते। यह दृश्य एक आचार्य देख रहे थे। उन्होंने बच्चे को प्रतिभाशाली समझकर उसके माता-पिता से पढ़ाने को माँग लिया। आगे चलकर यही महान प्रतिभाशाली आगर्भ दिगम्बर आचार्य हुए। जिन्होंने बचपन से लेकर जीवन भर कपड़ा छुआ भी नहीं।

पाठ 2

मंगलोत्तमशरण-पाठ

(मंगल-उत्तम-शरण)

अरहंत परमेष्ठी

सिद्ध परमेष्ठी

मङ्गलार्थियो ! णमोकार महामन्त्र के साथ-साथ ही पढ़ा जानेवाला यह मंगलोत्तमशरण-पाठ भी प्राकृतभाषा में लिखा हुआ, अति प्राचीन पाठ है।

चत्तारि मंगलं; अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा; अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि; अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

साधु परमेष्ठी

जिनधर्म

लोक में चार मंगल हैं। अरहन्त भगवान, मंगल हैं; सिद्ध भगवान, मंगल हैं; साधु (आचार्य, उपाध्याय और साधु), मंगल हैं तथा केवली भगवान द्वारा प्रणीत (बताया गया) वीतरागधर्म, मंगल है।

जो मोह-राग-द्वेषरूपी पापों को गलाए और सच्चा सुख उत्पन्न करे, उसे मंगल कहते हैं। अरहन्तादि स्वयं मंगलमय हैं और उनमें भक्तिभाव होने से, परम मंगल होता है।

लोक में चार उत्तम हैं। अरहन्त भगवान, उत्तम हैं; सिद्ध भगवान, उत्तम हैं; साधु (आचार्य, उपाध्याय और साधु), उत्तम हैं तथा केवली भगवान द्वारा प्रणीत (बताया हुआ) वीतरागधर्म, उत्तम है।

लोक में जो सबसे महान हो, उसे उत्तम कहते हैं। लोक में ये चारों सबसे महान हैं; अतः उत्तम हैं।

मैं, चारों की शरण में जाता हूँ। अरहन्त भगवान की शरण में जाता हूँ, सिद्ध भगवान की शरण में जाता हूँ, साधुओं (आचार्य, उपाध्याय और साधु) की शरण में जाता हूँ और केवली भगवान द्वारा प्रणीत (बताए गए) वीतरागधर्म की शरण में जाता हूँ।

शरण, सहारे को कहते हैं। पंच परमेष्ठी द्वारा बताये हुए मार्ग पर चलकर, अपने आत्मा की शरण लेना ही, पंच परमेष्ठी की शरण है।

जो व्यक्ति, पंच परमेष्ठी की शरण लेता है, उसका कल्याण होता है अर्थात् दु:ख (भव-भ्रमण) मिट जाता है।

यहाँ आचार्य तथा उपाध्याय को साधु में गर्भित करने का कारण यह है कि मोक्षमार्ग में आचार्य तथा उपाध्याय पद जरूरी नहीं है, बल्कि उनको छोड़कर ही, परमपद की प्राप्ति होती है।

निष्कर्ष - डॉक्टर, इंजीनियर, पैसे, रिश्ते, रोटी, कपड़ा, मकान, न मंगल हैं, न उत्तम हैं; इसलिए शरण भी नहीं हैं।

प्रश्न -

1. मंगल, उत्तम और शरण शब्द का अर्थ समझाइए।
2. हमें किसकी शरण लेना चाहिए ?
3. आत्मा का हित किस बात में है ?
4. चत्तारि मंगलं आदि पाठ को शुद्ध बोलिए।
5. पंच परमेष्ठी की शरण का क्या अर्थ है ?

बाह्य संयोग, न मंगल है, न उत्तम और न शरण है।

कण्ठगतैरपि प्राणैर्नाशुभं कर्मसमाचरणीयं कुशलमतिभिः

अर्थात् - प्राणोत्सर्जन (मरण) का समय आने पर भी पापरूप कार्यों को विवेकशील बुद्धिमानों को नहीं करना चाहिए। **(नीतिवाक्यामृतम्, सोमदेवाचार्य)**

पाठ 3

तीर्थंकर

धर्म का अभाव न हो तथा उसका विस्तार अखण्ड रहे; इसीलिए विशेष क्षेत्रों में तथा विशेष कालों में कुछ महापुरुषों का जन्म होता है। ये दिव्य पुरुष, वर्षों तक धर्म का उपदेश देते हैं, समवसरण आदि विभूति से युक्त होते हैं और उनके तीर्थंकर नामकर्म नाम का महापुण्य का उदय होता है, उन्हें तीर्थंकर कहते हैं।

अरहन्त अवस्था में ही किन्हीं-किन्हीं को तीर्थंकर का विशेष पद होता है। उनके पवित्रता तथा पुण्य का अनोखा संगम होता है। ये तीर्थंकर, अन्य अरहन्तों की तरह वीतरागी तथा सर्वज्ञ तो होते ही हैं, पर साथ-साथ हितोपदेशी भी होते हैं।

इस भरतक्षेत्र में एक काल में अनेक अरहन्त होते हैं, पर तीर्थंकर मात्र चौबीस ही होते हैं। तीर्थंकरों के कल्याणक होते हैं। उनके जन्मकल्याणक के काल में, उनको सुमेरुपर्वत पर अभिषेक के लिए इन्द्र-इन्द्राणी द्वारा ले जाया जाता है, तब सौधर्म इन्द्र उनके दाहिने पैर के अंगूठे पर चिह्न (निशान) देखकर उस तीर्थंकर का चिह्न निश्चित करता है। तीर्थंकरों का जन्म प्रायः अयोध्या में होता है और सम्मेदशिखरजी से मोक्ष होता है। आइए, हम वर्तमान में हुए चौबीस तीर्थंकरों के नाम तथा चिह्नों की जानकारी करते हैं -

तीर्थंकर	चिह्न	तीर्थंकर	चिह्न
1. ऋषभदेव (आदिनाथ)	**बैल**	13. विमलनाथ	**शूकर**
2. अजितनाथ	**हाथी**	14. अनन्तनाथ	**सेही**

3.	सम्भवनाथ	**घोड़ा**	15.	धर्मनाथ	**वज्रदण्ड**
4.	अभिनन्दन	**बंदर**	16.	शान्तिनाथ	**हिरण**
5.	सुमतिनाथ	**चकवा**	17.	कुन्थुनाथ	**बकरा**
6.	पद्मप्रभ	**लाल कमल**	18.	अरनाथ	**मछली**
7.	सुपार्श्वनाथ	**स्वस्तिक**	19.	मल्लिनाथ	**कुम्भ**
8.	चन्द्रप्रभ	**चन्द्र**	20.	मुनिसुव्रत	**कछुआ**
9.	पुष्पदन्त (सुविधिनाथ)	**मगर**	21.	नमिनाथ	**नील कमल**
10.	शीतलनाथ	**कल्पवृक्ष**	22.	नेमिनाथ	**शंख**
11.	श्रेयांसनाथ	**गेंडा**	23.	पार्श्वनाथ	**सर्प**
12.	वासुपूज्य	**भैंसा**	24.	महावीर	**सिंह**

इन्हें याद रखने के लिए हम एक छन्द याद रख सकते हैं –

छन्द

ऋषभ[१] अजित[२] संभव[३] अभिनन्दन[४],
सुमति[५] पदम[६] सुपार्श्व[७] जिनराय।
चन्द्र[८] पुहुप[९] शीतल[१०] श्रेयांस[११] जिन,
वासुपूज्य[१२] पूजित सुरराय॥
विमल[१३] अनन्त[१४] धर्म[१५] जस उज्ज्वल,
शान्ति[१६] कुन्थु[१७] अर[१८] मल्लि[१९] मनाय।
मुनिसुव्रत[२०] नमि[२१] नेमि[२२] पार्श्व[२३] प्रभु,
वर्धमान[२४] पद पुष्प चढ़ाय॥

तीर्थंकरों की उपस्थिति में हजारों, लाखों जीव, अरहंतपद, मुनिपद

तथा श्रावकपद भी प्राप्त करते हैं, कितने ही मुक्त होते हैं। हाँ, एक दिन तीर्थंकर अपने तीर्थंकरपद का भी त्यागकर, सर्वोच्च शाश्वत सिद्धपद की प्राप्ति करते हैं।

प्रश्न –

1. सामान्य अरहन्त किसे कहते हैं ?
2. तीर्थंकर किसे कहते हैं ?
3. तीर्थंकर और सामान्य अरहन्त में क्या अंतर है ? क्या प्रत्येक अरहन्त, तीर्थंकर होते हैं ?
4. तीर्थंकर कितने होते हैं ? नाम सहित बताइए।
5. क्या भगवान भी चौबीस ही होते हैं ?
6. पहले, पाँचवें, आठवें, तेरहवें, सोलहवें, बीसवें, बाईसवें और चौबीसवें तीर्थंकरों के नाम बताइए।
7. एक से अधिक नाम किन-किन तीर्थंकरों के हैं ?

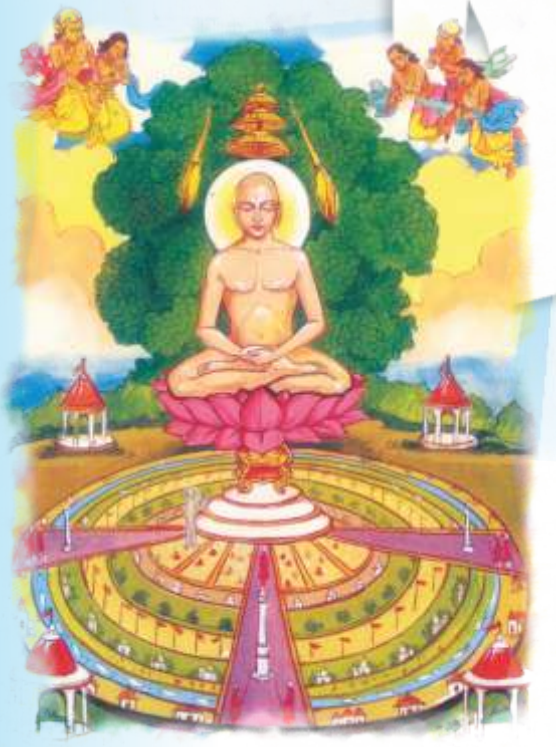

समवसरण आदि
विभूति से युक्त
तीर्थंकर परमात्मा

1. श्री ऋषभदेव

चिह्न : बैल

2. श्री अजितनाथ

चिह्न : हाथी

3. श्री संभवनाथ

चिह्न : घोड़ा

4. श्री अभिनंदननाथ

चिह्न : बंदर

5. श्री सुमतिनाथ

चिह्न : चकवा

6. श्री पद्मप्रभ

चिह्न : लाल कमल

7. श्री सुपार्श्वनाथ

चिह्न : स्वस्तिक

8. श्री चन्द्रप्रभ

चिह्न : चन्द्र

9. श्री पुष्पदंत (सुविधिनाथ)

चिह्न : मगर

10. श्री शीतलनाथ

चिह्न : कल्पवृक्ष

11. श्री श्रेयांसनाथ

चिह्न : गेंडा

12. श्री वासुपूज्य

चिह्न : भैंसा

13. श्री विमलनाथ

चिह्न : शूकर

14. श्री अनंतनाथ

चिह्न : सेही

15. श्री धर्मनाथ

चिह्न : वज्रदंड

16. श्री शांतिनाथ

चिह्न : हिरण

17. श्री कुन्थुनाथ

चिह्न : बकरा

18. श्री अरनाथ

चिह्न : मछली

19. श्री मल्लिनाथ

चिह्न : कुम्भ

20. श्री मुनिसुव्रत

चिह्न : कछुआ

21. श्री नमिनाथ

चिह्न : नील कमल

22. श्री नेमिनाथ

चिह्न : शंख

23. श्री पार्श्वनाथ

चिह्न : सर्प

24. श्री महावीर

चिह्न : सिंह

पाठ 4

देवदर्शन

जिनेश– चलो ! चलो दिनेश, सुबह–सुबह यह क्या कर रहे हो, सुबह तो सबसे पहले हमें देवदर्शन करना चाहिए।

दिनेश– पत्थर को पूजने से क्या लाभ होगा ?

जिनेश– आपकी फोटो कोई फाड़े तो आपको कैसा लगेगा ?

दिनेश– मेरी फोटो का अपमान, मेरा ही तो अपमान है; इसीलिए मुझे तो बुरा लगेगा।

जिनेश– वाह ! जब आपके फोटो के अपमान में, आपका अपमान है, तो क्या भगवान की प्रतिमा के सम्मान में, भगवान का सम्मान नहीं है ?

दिनेश– हूँ... बात तो सही है, फिर तो मैं भी देवदर्शन के लिए चलूँगा।

जिनेश– चलो ! तो फिर तुम धुले वस्त्र पहनकर आओ। वातावरण की पवित्रता बनाए रखने के लिए, दूसरों का ध्यान भंग न हो, इसका ख्याल करना चाहिए। फोन, मोबाइल, जैसे बाधक साधनों को भी वहाँ ले जाना उचित नहीं है।

(दोनों मन्दिर के बाहर आकर खड़े हैं।)

जिनेश– हमें चाहिए कि पहले चप्पल–जूते खोलकर, पानी से हाथ–पैर धोकर, फिर भगवान की जय–जयकार करते हुए तथा तीन बार **निःसहि निःसहि निःसहि** बोलते हुए मन्दिर में प्रवेश करें।

दिनेश– नि:सहि का क्या अर्थ होता है ?

जिनेश– नि:सहि का अर्थ सर्व सांसारिक कार्यों का निषेध है। तात्पर्य यह है कि संसार के सब कार्यों की उलझन छोड़कर, मन्दिर में प्रवेश करना चाहिए।

दिनेश– उसके बाद ?

जिनेश– उसके बाद, भगवान की वेदी के सामने ॐ जय, जय, जय; नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु; णमो अरहंताणं आदि णमोकार मन्त्र एवं चत्तारि मंगलं आदि पाठ बोलते हुए, जिनेन्द्र भगवान को अष्टांग नमस्कार[1] करें।

इसके बाद चित्त को एकाग्र करके, भगवान की स्तुति पढ़ते हुए, तीन

1. दो पैर, दो हाथ, नितंब, पीठ, हृदय, सिर, – ये आठ अंग होते हैं। यहाँ तात्पर्य गवासन में ढोक (वन्दन) करने का है।

प्रदक्षिणा[1] देनी चाहिए। फिर भगवान को नमस्कार करके, नौ बार णमोकार मन्त्र पढ़ते हुए, कार्योत्सर्ग[2] करना चाहिए। मन्दिर में कभी राग-द्वेष की बातें नहीं करना चाहिए, भक्ति भी मन्द स्वर में ही करना चाहिए। मन्दिर भी एक समवसरण है। हाँ, चावलादि द्रव्य भी पेटी में ही चढाए जाएँ।

दिनेश- अच्छा तो शान्ति से, चित्त एकाग्र करके, भगवान का दर्शन करना चाहिए। और.....

जिनेश- और क्या ? उसके बाद शान्ति से बैठकर, कम से कम आधा घण्टा शास्त्र पढ़ना चाहिए। यदि मन्दिरजी में उस समय प्रवचन होता हो, तो वह सुनना चाहिए।

दिनेश- बस.....।

जिनेश- बस क्या ? जो शास्त्र में पढ़ा हो अथवा प्रवचन में सुना हो, उसे थोड़ी देर बैठकर मनन करना चाहिए तथा सोचना चाहिए कि मैं कौन हूँ ? भगवान कौन हैं ? मैं स्वयं भगवान कैसे बन सकता हूँ ? आदि, आदि।

दिनेश- इन सबसे क्या लाभ होगा ?

जिनेश- इससे आत्मा में शान्ति प्राप्त होती है; परिणामों में निर्मलता आती है; मन्दिर में आत्मा की चर्चा होती है; अत: यदि हम आत्मा को समझकर, उसमें लीन हो जावें, तो परमात्मा बन सकते हैं।

निष्कर्ष - देवालय एक शिक्षालय है, भिक्षालय (सांसारिक इच्छाओं की

1. प्रदक्षिणा अर्थात् परिक्रमा। भगवान के रूप को चारों ओर से निहारते हुए तथा उनका गुणानुवाद करने में विशेषरूप से सावधान रहते हुए, परिक्रमा करना।
2. काय के प्रति ममत्व का त्याग।

पूर्ति के लिए कुछ भी माँगने का स्थान) नहीं है। यहाँ जिज्ञासा लेकर आनेवालों को समाधान मिलता ही मिलता है। भगवान सरीखा होने की शिक्षा मिलने के लिए जिनदर्शन करना चाहिए, भगवान से कुछ माँगने के लिए नहीं।

प्रश्न –

1. देवदर्शन की विधि अपने शब्दों में बोलिए।
2. मन्दिर में कैसे और क्यों जाना चाहिए ?
3. देवदर्शन करते समय क्या बोलना चाहिए ?
4. मन्दिर में क्या-क्या करना चाहिए ?

दो चित्र

दानव

(1) तुम्हारे लड़के ने गेंद मारकर मेरे कपड़े बर्बाद कर दिए हैं, एक दिन मैं उसे पत्थर पर पटक दूँगा।

(2) क्या तुम अंधे हो ? तुम्हें दिखता नहीं, मुझे धक्का मार दिया।

(3) तुमने मेरा ग्राहक क्यों बुला लिया, एक दिन मैं भी तुम्हारा मजा चखाऊँगा।

(4) मेरे हिस्से में छोटा मकान दिया और आपने बड़ा मकान ले लिया। मैं चाहे तो मकान में आग लगा दूँगा किंतु हिस्सा पूरा-पूरा लूँगा।

(5) मैं तो शास्त्री और आचार्य हूँ। इतने ग्रंथ लिखे हैं। अत: मैं ही महान हूँ।

मानव

(1) आप इतने दु:खी क्यों हो रहे हैं, यदि बच्चे ने मेरा कपड़ा फाड़ भी दिया तो क्या हुआ ? यदि मेरा बच्चा फाड़ता तो ?

(2) कोई बात नहीं, धोखे में आपका धक्का लग भी गया, तो क्या हुआ ?

(3) यदि आपके यहाँ से हमारे ग्राहक ने सौदा ले भी लिया तो क्या हो गया ? सब अपने-अपने भाग्य का खाते हैं।

(4) भाई साहब ! आपको जो चाहिए सो ले लो। मैं तो बटवारा ही पाप समझता हूँ। फिर भाग्य से मनुष्य राजा से रंक और रंक से राजा बन जाता है।

(5) यदि चार अक्षर पढ़ लिख गया तो क्या ? तत्त्वज्ञान तो किसी को भी हो सकता है।

पाठ 5

स्व-पर भेद-विज्ञान

मङ्गलार्थियो! कल्पना करो, यदि हम अपना घर भूल जाएँ, तो क्या हालत होगी ? हमें पद-पद पर दुःख होगा, क्योंकि हम जिसके भी घर में जाएँगे, वह हमें स्वीकार नहीं करेगा; हमारी उपेक्षा करेगा तथा बाहर निकाल देगा। सहानुभूति भी कोई कितनी देर दिखाएगा ? हमारा दुःख हमको ही भोगना पड़ेगा। हमें चाहिए कि यदि सुखी होना है, तो हम हमारा घर ढूँढ लें।

ठीक उसी प्रकार, हम अनादि काल से, अपने आत्मारूपी शाश्वत घर को भूलकर, पर घर में प्रवेश करने का प्रयास कर रहे हैं; इसीलिए आज हम दुःखी हैं।

इस कान, नाक, आँख से बने इस माटी के पुतले को, अपना मान रहे हैं। यह तो जड़ है, अचेतन है। इस शरीर में ज्ञानगुण नहीं है, यह जानता भी नहीं है। यह शरीर सुखी-दुःखी भी नहीं होता है। यदि शरीर, सुखी-दुःखी होता तो मुर्दे को अच्छे कपड़े, गहने पहनाने से, वह भी सुखी तथा जलाने से दुःखी होता, जबकि ऐसा नहीं है। मुर्दे के कान, नाक, आँख भी सुन, सूँघ, देख नहीं सकते। इसका तात्पर्य, शरीर में ज्ञान नहीं है।

वास्तव में बात यह है कि जिस प्रकार हम बाहर की टेबल, कुर्सी आदि वस्तुएँ देखते हैं, वे सब सूरज के उजाले की उपस्थिति में देखते हैं तथा उसके अभाव में नहीं देखते; उसी प्रकार शरीर आदि जितने भी पर-पदार्थ हम देखते हैं, वे सब अपने जीव के प्रकाश (ज्ञान) में देखते हैं। जीव में ज्ञानगुण है, वह चेतन है तथा सुख-दुःख का वेदन भी जीव ही करता है। यही जीव और अजीव में विशेषता है, अन्तर है।

इसमें अपना जीव तो, स्व है और समस्त अजीव, पर हैं - ऐसा जो भिन्नता का ज्ञान है, वह स्व-पर का भेद-विज्ञान कहलाता है।

जब हम बाजार से गेहूँ लाते हैं, तो उसके साथ बोरा भी आता है, कंकड़ आदि भी आते हैं। हम गेहूँ को उन सबसे अलग करते हैं और फिर गेहूँ का ही सेवन करते हैं। ठीक उसी प्रकार हमारे जीव के साथ-साथ, अजीव भी हैं, उनको अलग देखना हमारा धर्म है। किसी को किसी में मिलाना दुःख का कारण है।

ध्यान रखना! अजीव भी दो प्रकार का है। एक तो दूरवर्ती अजीव है, जैसे - टेबल, कुर्सी आदि। इन अजीवों के साथ जीव का **संयोग-सम्बन्ध** है; ये दूध-पानी के समान घुले-मिले नहीं हैं। ये स्पष्ट ही अलग दिखते हैं। अपने सामने इनका वियोग भी होता है।

एक नजदीक का अजीव है, वह यह शरीर है। इस शरीर का जीव के साथ **एकक्षेत्रावगाह-सम्बन्ध** है। यह अजीव अपने जीव के साथ दूध-पानी के समान घुला-मिला है। जन्म से लेकर मरण तक का साथी है; इसलिए इस अजीव से भेद-विज्ञान होना थोड़ा कठिन है, पर अच्छे से समझे तो यह शरीर भी टेबल-कुर्सी के समान ही भिन्न दिखने लग जाएगा।

हमारी माताजी की आत्मा, जीव है तथा उनका शरीर, अजीव है। उसी प्रकार पिताजी आदि का समझना। यहाँ तक कि जो पेड़ दिख रहा है, उसका शरीर, अजीव है और उसकी आत्मा, जीव है। इसी प्रकार हाथी, घोड़ा, चींटी, अग्नि, वायु आदि में समझना - यहाँ तक कि आचार्य, उपाध्याय, साधु तथा अरहन्त में भी समझना।

दो भिन्न वस्तुओं को एक मानना, अज्ञान है तथा दो भिन्न वस्तुओं को भिन्न ही मानना, भेद-विज्ञान है और भेद-विज्ञानी ही सुखी होते हैं। भेद-विज्ञानी को न मरने का डर सताता है, न बीमार होने का। इसीलिए जीवन में सबसे पहला काम, स्व-पर का भेद-विज्ञान करना ही है।

निष्कर्ष - इस जीव-अजीव की भिन्नता के ज्ञान को ही भेद-विज्ञान कहते हैं। इसी भेद-विज्ञान से जीव, मुक्त होते हैं और इसी के अभाव में जीव, चारों गतियों में भ्रमण करते हैं।

प्रश्न -

1. जीव किसे कहते हैं ?
2. अजीव किसे कहते हैं ?
3. नीचे लिखी वस्तुओं में जीव-अजीव की पहिचान करो—
   हाथी, तुम, कुर्सी, मकान, रेल, कान, आँख, रोटी, हवाई जहाज, हवा, आग।
4. जीव-अजीव की पहिचान से क्या लाभ है ?

पाठ 6

दिनचर्या

वर्णमाला 'अ' से प्रारम्भ होती है। सबके प्रारम्भ में आनेवाला 'अ', अनुशासन की महिमा बताता है। अनुशासन, यह होनहार जीवों के जीवनपथ का प्रथम चरण है। अनुशासन का क्षेत्र, व्यापक है। जैसे - स्कूल का अनुशासन, नौकरी का अनुशासन आदि। पर, यहाँ स्वस्थ शरीर तथा सशक्त विचार पद्धति की कारणभूत दिनचर्या के अनुशासन को आत्मसात् कराने का प्रयास किया जा रहा है।

सुबह उठने से लेकर, रात्रि में सोने तक जिन कार्यों को नियत समय पर करने से हमारा जीवन अनुशासित स्वस्थ, निराकुल तथा सुखी हो सकता है, उसे दिनचर्या कहते हैं। सुबह ब्रह्ममुहूर्त (सूर्योदय के पूर्व का काल) में उठने की आदत होना चाहिए। बिना किसी के उठाए ही उठने का अभ्यास रखें। स्वावलम्बी जीवन, आदर्श जीवन होता है। ब्रह्ममुहूर्त योगिओं के उठने का काल है, साधना का उत्कृष्ट समय है, उस समय हमें आत्मा-परमात्मा का चिन्तन करना चाहिए। नौ बार णमोकार मन्त्र बोलकर; संसार, शरीर और भोगों के प्रति ममत्व कैसे छूटे, इसका विचार करना चाहिए।

सूर्योदय होने के पश्चात्, शौच आदि से निवृत्त होकर, थोड़ा व्यायाम करके, स्नान करना चाहिए। फिर साफ, धुले वस्त्र पहनकर, मन्दिरजी भगवान के दर्शनों के लिए जाना चाहिए। दर्शन-पूजन से निवृत्त होकर, घर आना चाहिए। मन्दिरजी की सफाई-वैयावृत्त्य का निरन्तर ध्यान रखें।

घर के सभी बड़े-बुजुर्गों को नम्रता से झुककर जय-जिनेन्द्र करना चाहिए, फिर दूध आदि लेकर सुबह 10-11 बजे यथायोग्य, यथासम्भव अतिथि को भोजन कराकर, स्वयं भी शान्तिपूर्वक भोजन करना चाहिए।

स्कूल के समय पर स्कूल जाना चाहिए। वहाँ भी पढ़ाई की तरफ ध्यान देना चाहिए। कुसंगति से सर्वथा बचना चाहिए।

शाम को दिन छिपने के पूर्व 4-5 बजे भोजन कर लेना चाहिए। रात्रिभोजन का त्याग, यह जैनियों का मूल लक्षण है; अत: आरम्भ (हिंसा, पाप) का कोई कार्य, नहीं करना चाहिए।

रात्रि में सोने के पूर्व, फिर कुछ पाठ को पढ़कर, णमोकार मन्त्र का स्मरण करते हुए आत्मा-परमात्मा का चिन्तन करते हुए, 9-10 बजे सो जाना चाहिए ताकि फिर प्रात: 5 बजे उठ सकें।

हाँ, दिन में घर के कार्यों में सहयोग, कुछ पड़ोसियों की सेवा, रोगियों की सेवा, समाज तथा देश के लिए भी कुछ समय अवश्य निकालना चाहिए।

दिनचर्या ठीक रहने से, रात्रि भी दु:स्वप्नरहित निर्दोष होती है; थोड़ी-सी नींद भी पर्याप्त हो जाती है और दिन भर तरो-ताजा रखती है। हमारे

मुनिराज संकल्प-विकल्प से रहित, ज्ञान-ध्यान में लीन रहते हैं; अतः उनको नींद की विशेष आवश्यकता नहीं होती।

शिक्षा - जिनकी दिनचर्या अच्छी होती है, वे ही महान भगवान बन सकते हैं; आलसी व्यक्ति, घृणा का पात्र बनता है।

प्रश्न—

1. एक अच्छे बालक की दिनचर्या कैसी होनी चाहिए ?
2. प्रातः सबसे पहले उठकर हमें क्या करना चाहिए ?
3. शारीरिक सफाई और मन की पवित्रता से क्या समझते हो ?
4. शारीरिक सफाई के लिए क्या-क्या करना चाहिए ?
5. मानसिक (आत्मिक) पवित्रता के लिए क्या-क्या करना चाहिए ?

बोध कथा

नदी की रेत में कुछ बच्चे खेल रहे थे। उन्होंने रेत के मकान बनाए थे, प्रत्येक बच्चा कह रहा था - यह मेरा है, सबसे अच्छा है, इसे कोई दूसरा नहीं पा सकता।

इस प्रकार वे खेलते रहे और जब किसी ने उनमें से किसी के मकान को तोड़ने की चेष्टा की - तो लड़े भी-झगड़े भी। जब अंधेरा घिर आया तो उन्हें अपने-अपने घर लौटने का स्मरण आया। रेत के उनके बनाए हुए मकान वहीं के वहीं, जैसे के तैसे बने हुए पड़े रहे - उनमें उनका 'मेरा और तेरा' भी न रहा।

यह छोटा-सा प्रसंग कितना सत्य है। क्या हम सब भी रेत पर महल बनाते हुए बच्चों की तरह ही नहीं हैं ? कितने कम लोग ऐसे हैं जिन्हें सूर्य को डूबते देखकर घर लौटने का स्मरण आता हो ? अधिकांश लोग तो रेत के इन घरों में ही 'मेरा-तेरा' का भाव लिए हुए ही जगत से हमेशा के लिए विदा हो जाते हैं - महल मकान सब यहीं पड़े रह जाते हैं।

पाठ 7

तीर्थंकर ऋषभदेव

मङ्गलार्थी बच्चो ! आप जानते ही हो कि अपने भरतक्षेत्र के 24 तीर्थंकरों में सबसे पहले भगवान ऋषभदेव हैं। उनका जन्म असंख्य वर्ष पहले अपनी इस भारत भूमि में हुआ और उन्होंने ही सबसे पहले धर्म का उपदेश देकर, भरतक्षेत्र में मोक्ष का दरवाजा खोला। भगवान ऋषभदेव का जन्म अयोध्यानगरी में चैत्र वदी नवमी के दिन हुआ था।

ऋषभदेव भगवान ने संसार से मुक्त होने के, आठ भव पूर्व वज्रजंघ नामक राजा हुए, तब उन्होंने अपनी श्रीमती रानी के साथ बड़ी भक्तिपूर्वक दो मुनिवरों को आहारदान दिया। वह प्रसंग देखकर नेवला, सिंह, सुअर व बन्दर जैसे प्राणी भी बहुत खुश हुए और आगे चलकर वे सब ऋषभदेव के ही पुत्र होकर मोक्ष गए।

मुनियों को आहारदान देने के फल से, भगवान ऋषभदेव का वह जीव, भोगभूमि में मनुष्य हुआ। साथ के सभी जीवों ने भी वहीं पर जन्म लिया। भोगभूमि में, सभी प्रकार की भौतिक अनुकूलता है।

एक बार प्रीतिंकर नामक मुनिराज, जो कि आकाश में चलते थे, वे उस भोगभूमि में आये और बहुत उपदेश देकर, भावी भगवान के जीव को आत्मस्वरूप समझाया। यह समझ कर, भावी भगवान के जीव ने उसी वक्त सम्यग्दर्शन प्रगट किया। अन्य पाँचों जीवों ने भी आत्मस्वरूप समझकर सम्यग्दर्शन प्राप्त किया।

इसके बाद, अन्तिम तीसरे भव में, भगवान का जीव, विदेहक्षेत्र में वज्रनाभि चक्रवर्ती हुआ। उस समय उनके पिताश्री भी तीर्थंकर थे। चक्रवर्ती होते हुए भी

भावी भगवान जानते थे कि इस चक्रवर्ती राज्य में मेरा सुख नहीं है; सुख तो धर्म में है। अत: चक्रवर्ती का राज छोड़कर, वे मुनि हो गए और धर्म का पालन करके, सर्वार्थसिद्ध विमान में देव हुए।

वहाँ से वे अयोध्यापुरी में नाभिराजा व मरुदेवी माता के पुत्र रूप में जन्मे, वही बाद में भगवान ऋषभदेव कहलाए। भावी भगवान का जन्म होते ही इन्द्रों ने अयोध्या आकर, बड़ा उत्सव किया।

जिस वक्त भावी भगवान का जन्म हुआ, उस वक्त इस भरतक्षेत्र में तीसरा काल था, लोगों को सब चीजें कल्पवृक्ष से मिल जाती थीं परन्तु बाद में जब तीसरा काल पूरा होने लगा और कल्पवृक्ष नष्ट होने लगे, तब भावी भगवान ने अनाज वगैरह के द्वारा, जीवननिर्वाह की रीति लोगों को सिखाई और भी अनेक विद्याएँ सिखाईं और भरतक्षेत्र में राजव्यवस्था चलाई। भावी भगवान का जीवन बहुत पवित्र था। उन्हें आत्मा का ज्ञान था अर्थात् वे अविरत सम्यग्दृष्टि थे।

भावी भगवान ऋषभदेव जब राजा थे, तब उनकी दो रानियाँ थी और 101 पुत्र थे। उनमें सबसे बड़े भरतचक्रवर्ती आदि सौ पुत्र तथा ब्राह्मी नामक पुत्री नन्दामाता से जन्मे थे। सुनन्दामाता से बाहुबली पुत्र का तथा सुन्दरी नामक पुत्री का जन्म हुआ। ऋषभदेव ने सब पुत्रों को अच्छा धार्मिक ज्ञान दिया, एवं सभी तरह की विद्याएँ पढ़ाई।

इस तरह से बहुत काल बीत चुका, तब एक बार चैत्र वदी नवमी के दिन अयोध्या में भावी भगवान का जन्मोत्सव हो रहा था। बड़ा राजदरबार लगा था, अनेक राजा आकर उनका अभिनन्दन करते थे व उत्तम वस्तुएँ भेंट करते थे, देव-देवियाँ भी आकर भक्ति से नृत्य करते थे।

नीलांजना नाम की एक देवी बहुत अच्छा नृत्य कर रही थी, इतने में नृत्य करते-करते ही देवी की आयु समाप्त हो गई - उसकी मृत्यु हो गई। देह की ऐसी क्षणभंगुरता देखते ही, राजा ऋषभदेव का मन, संसार से विरक्त हुआ, और दीक्षा लेकर वे मुनि हो गए। उनकी दीक्षा के समय भी इन्द्र ने बड़ा उत्सव किया। अभी तक असंख्य वर्षों से भरतक्षेत्र में कोई मुनि न थे, भगवान ऋषभदेव ही पहले मुनि हुए थे।

मुनि होकर भगवान ने उग्र आत्मध्यान किया। छह मास तक तो वे ध्यान में ही स्थिर खड़े रहे, इसके बाद भी सात मास, नौ दिन तक ऋषभ मुनिराज को आहार नहीं मिला, क्योंकि मुनिराज को किस विधि से आहार दिया जाता है, यह किसी को मालूम न था। इस प्रकार एक वर्ष से ज्यादा काल भोजन के बिना ही बीत गया, परन्तु भगवान को कोई कष्ट न था, वे तो आत्मध्यान करते थे और आनन्द के अनुभव में मग्न रहते थे।

अन्त में वैशाख सुदी तीज के दिन, ऋषभ मुनिराज, हस्तिनापुर पधारे। मुनिराज को देखते ही वहाँ के राजकुमार श्रेयांस को बड़ा भारी आनन्द हुआ और पूर्वभव का ज्ञान हो गया। उन्हें मालूम पड़ा कि इन्हीं भगवान के साथ आठ भव पूर्व मैंने मुनियों को आहारदान दिया था। बस, यह याद आते ही बड़ी भक्ति के साथ उन्होंने मुनिराज का आह्वान किया और मन-वचन-काया की शुद्धिपूर्वक नवधा-भक्ति के साथ गन्ने के रस से (इक्षुरस से) भगवान का पारणा कराया। मुनि होने के बाद भगवान ने यह पहली ही बार आहार लिया था; अतः यह देखकर सभी लोग बहुत आनन्दित हुए, देवों ने भी आकाश में बाजे, बजाकर बड़ा उत्सव किया। तभी से वह दिन **'अक्षय तीज'** पर्व के रूप में आज तक चल रहा है। भगवान तो फिर वन में जाकर अपने आत्मध्यान में लग गए। उन्हें तो बस, आत्मा का ध्यान करना - यही एक काम था; और कोई काम न था।

ध्यान करते-करते प्रयागक्षेत्र में भगवान को केवलज्ञान हुआ, तब वहाँ बड़ा भारी उत्सव हुआ; वह प्रयाग भी तीर्थ बन गया। केवलज्ञान होने से भगवान ऋषभदेव अरिहन्त हुए - तीर्थंकर हुए। देवों एवं मनुष्यों, पशु एवं पक्षी, सब उनका उपदेश सुनने को धर्मसभा में आये।

भगवान ने जैनधर्म का उपदेश दिया, आत्मा का स्वरूप समझाया और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का बोध दिया। यह सुनकर सभी जीवों में अपार हर्ष हुआ, अनेक जीवों ने आत्मा को समझा, अनेक जीव दीक्षा लेकर मुनि हुए और

अनेक जीवों ने मोक्ष प्राप्त किया। भगवान के सभी पुत्र भी मोक्षगामी हुए। इस प्रकार भरतक्षेत्र में भगवान ऋषभदेव ने मोक्ष का दरवाजा खोल दिया और रत्नत्रयरूप धर्मतीर्थ का प्रवर्तन किया। अत: वे हमारे आदि-तीर्थंकर कहलाए।

बहुत समय तक धर्म का उपदेश देकर भगवान ऋषभदेव, कैलाशपर्वत पर पधारे और वहीं से माघ वदी 14 की सुबह मोक्ष पधारे, संसार से छूटकर भगवान सिद्ध हुए। आज भी सिद्धलोक में वे पूर्ण आनन्द में विराज रहे हैं, उनको हमारा नमस्कार हो!

भगवान ने धर्म का जैसा उपदेश दिया, वैसा हमें समझना चाहिए और भगवान ने जैसी आत्मसाधना की, वैसी हमें भी करना चाहिए।

शिक्षा - अपने अनादिनाथ, आत्मा को जानना ही सच्चे अर्थ में भगवान आदिनाथ को जानना है।

प्रश्न -

1. भगवान आदिनाथ का संक्षिप्त परिचय दीजिए?
2. अक्षय तृतीया पर्व के सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो?
3. राजा ऋषभदेव, भगवान आदिनाथ कैसे बने तथा उन्हें आदिनाथ क्यों कहा जाता है?
4. उन्हें वैराग्य कैसे हुआ?
5. क्या उनका बताया हुआ मुक्तिमार्ग हम पा सकते हैं? यदि हाँ, तो कैसे?

पाठ 8

मेरा धाम

शुद्धातम है मेरा नाम, मात्र जानना मेरा काम।
मुक्तिपुरी है मेरा धाम[1], मिलता जहाँ पूर्ण विश्राम॥

जहाँ भूख का नाम नहीं है, जहाँ प्यास का काम नहीं है।
खाँसी और जुखाम नहीं है, आधि[2] व्याधि[3] का नाम नहीं है॥

सत्[4] शिव[5] सुन्दर मेरा धाम,
शुद्धातम है मेरा नाम। मात्र जानना मेरा काम॥1॥

स्वपर भेद-विज्ञान करेंगे, निज आतम का ध्यान धरेंगे।
राग-द्वेष का त्याग करेंगे, चिदानन्द[6] रस पान करेंगे॥

सब सुखदाता मेरा धाम,
शुद्धातम है मेरा नाम। मात्र जानना मेरा काम॥2॥

संसारदुःख

मोक्षसुख

1. निवास, 2. मानसिक रोग, 3. शारीरिक रोग, 4. सच्चा, 5. कल्याणकारी, 6. आत्मा का आनन्द

गौरव की सुरक्षा

जिन दिनों महाराणा प्रताप निर्जन जंगलों और ऊँचे पर्वतों में भटकते फिर रहे थे, उन्हीं दिनों मेवाड़ का एक भाट, पेट की भूख-ज्वाला को शांत करने के लिए मुगल सम्राट अकबर के दरबार में पहुँचा। जब वह बादशाह के सन्मुख गया तो उसने अपने सिर से पगड़ी उतार ली और बगल में दबाकर सलाम किया।

अकबर ने भाट की यह उद्दंडता देखी तो एकदम क्रोधित हो उठा और कड़े स्वर में बोला – 'जानता है, पगड़ी उतारकर सलाम करना कितना बड़ा अपराध है ?'

भाट दीनतापूर्वक बोला – 'क्षमा अन्नदाता! जानता तो सब कुछ हूँ परंतु क्या करूँ, आदत से मजबूर हूँ। यह पगड़ी स्वतन्त्रता प्रेमी महाराणा प्रताप की दी हुई है, जब वे अत्यंत कष्ट झेलते हुए भी आपके सन्मुख नहीं झुके तो उनकी दी हुई पगड़ी कैसे झुकाई जा सकती है ? मेरा जीवन ही क्या ? मैं ठहरा पेटू आदमी, जहाँ पेट भरने की आशा देखी, वहीं झुक गया किंतु उनकी पगड़ी उनके आदर्श के विपरीत कैसे झुका दूँ ?'

भाट की यह बात सुनकर अकबर अत्यंत आश्चर्य में पड़ गया और बोला – 'महाराणा प्रताप कितना महान है कि जिसका भाट तक शत्रु के शरणागत होने पर भी उनकी मर्यादा को सुरक्षित रखना चाहता है।'

हमें वीतरागी सर्वज्ञ परमात्मा की थाती जैनधर्म और जैनकुल मिला है, क्या हम उसके आदर्श और सिद्धांतों की रक्षा इस संसार और गृहस्थी के झंझटों में रहते हुए भी कर पा रहे हैं ? जैनधर्म का आदर्श है – प्रत्येक आत्मा में परमात्मा बनने की या पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने की स्वाधीन शक्ति। क्या भौतिकवाद की इस चकाचौंध में भोगों के भिखारी बनकर हम इस परमात्म शक्ति के गौरव की सुरक्षा कर रहे हैं ? उनका सिद्धांत है – भेदविज्ञान की प्राप्ति, जिसके बल पर अहिंसा, सत्यादि धर्म विकास को प्राप्त होते हैं तथा राग-द्वेषादि कषायों में हीनता आती है। क्या उस भेदविज्ञान की प्राप्ति के लिए तत्त्व निर्णय करने की तीव्र उत्कंठा हम में जागृत हुई है ? यदि नहीं तो हम उस महाराणा के भाट से भी गए-बीते होकर जैनकुल और जैनधर्म के नाम पर कलंक लगा रहे हैं। वह भाट अपने प्राणों की परवाह किए बिना महाराणा की पगड़ी के गौरव की सुरक्षा कर रहा है और हम सौभाग्य से इस धर्मरत्न को पा करके भी उसके नाम पर बट्टा लगा रहे हैं।

भाग्य के अनुसार ये बाह्य संयोग जो मिलना है, वे मिलेंगे ही, किंतु हमारे परमपुण्य से जो जैनधर्म का सुयोग बन गया है, जिसका उपयोग दुःख दूर करने में करना चाहिए, वह नहीं किया तो भौतिक चकाचौंध में अंधे होकर परिग्रह की तीव्र ममता से नरकादि गतियों में पहुँचकर सागरोंपर्यंत अनंत कष्टों का सामना करते हुए अनंत काल के लिए निगोद में पहुँच जाएँगे, जहाँ एक श्वास में 18 बार जन्म-मरण करते रहेंगे।

तीर्थधाम चिदायतन

निर्माणाधीन तीर्थधाम चिदायतन के विशाल संकुल में स्थापित,
श्री शान्तिनाथ अस्थायी जिनालय के दर्शन हेतु अवश्य पधारें।

पंजीकृत कार्यालय :
श्री शान्तिनाथ-अकम्पन-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट,
'विमलांचल', हरीनगर, अलीगढ़-202001 (उत्तरप्रदेश) भारत।
Ph: 0571-2410010 / 11 / 12
E-mail: info@mangalayatan.com | www.mangalayatan.com

निर्माण-कार्यालय एवं स्वागत कक्ष :
तीर्थधाम चिदायतन
हस्तिनापुर, मेरठ-250404 (उत्तरप्रदेश) भारत।
Ph: +91 9412749670 E-mail: info@chidayatan.com | www.chidayatan.com

निर्माणस्थल :
तीर्थधाम चिदायतन
दूसरी नसियाँजी से आगे,
हस्तिनापुर, मेरठ-250404 (उत्तरप्रदेश) भारत।
(सम्पर्क : +91 9837079003, श्री मुकेशचन्द जैन, मेरठ)

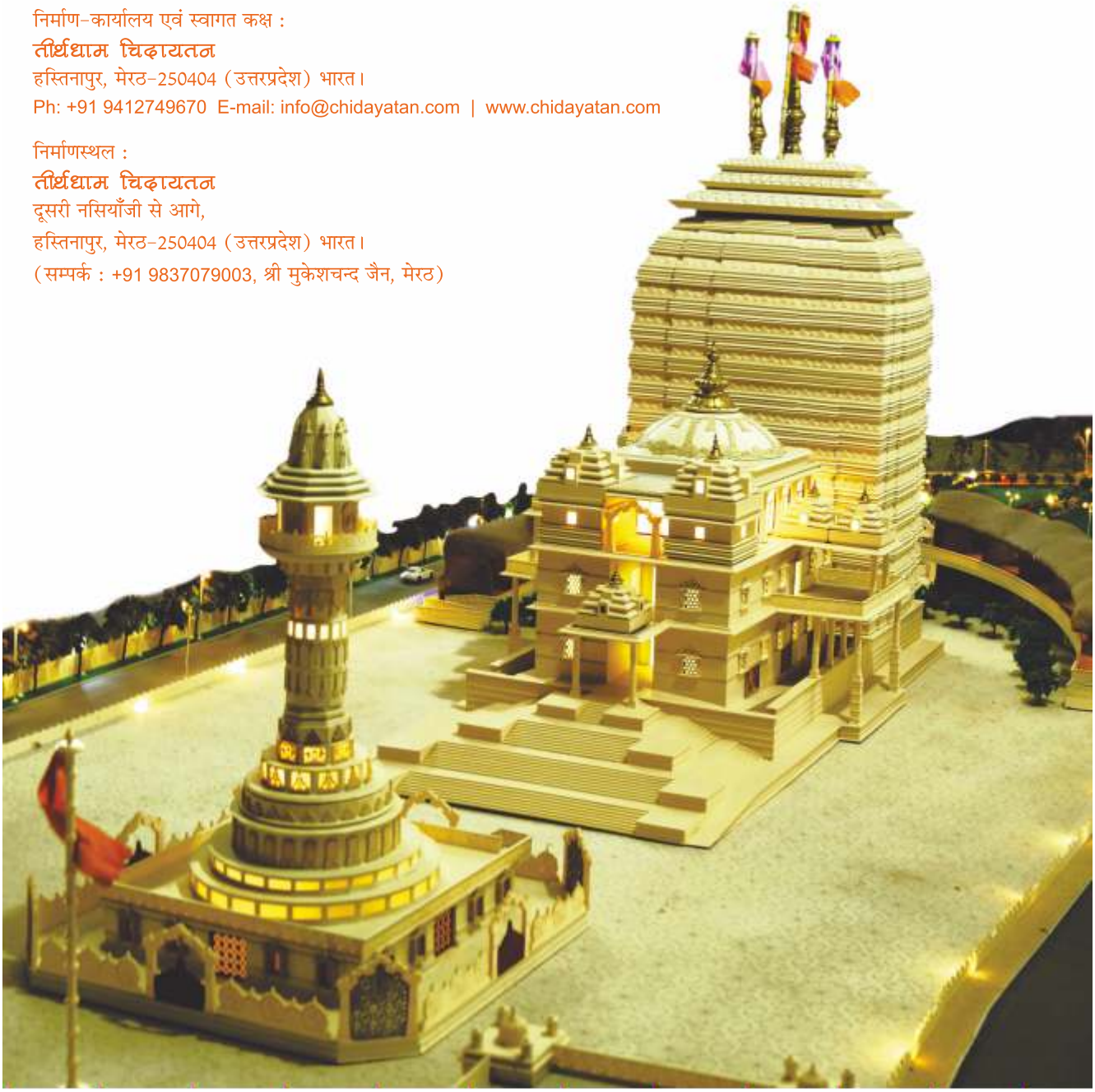

भारत में उत्तरप्रदेश प्रांत की हृदयस्थली अलीगढ़ में निर्मित २१ वीं शती का
विशुद्ध जिनायतन संकुल एवं समाजसेवा का उत्कृष्ट संस्थान

तीर्थधाम मङ्गलायतन

प्रमुख दर्शनीय स्थल:

- कृत्रिम कैलाशपर्वत पर भगवान आदिनाथ मन्दिर एवं चौबीस तीर्थंकरों की निर्वाणस्थलियां-
- कैलाशपर्वत, सम्मेदशिखर, गिरनारगिर, चम्पापुर, पावापुरी एवं सोनागिरी व स्वर्णपुरी सोनगढ़ की विधिपूर्वक स्थापनाओं के दर्शन
- भगवान महावीर मन्दिर
- भगवान बाहुबली मन्दिर
- पंडित दौलतराम जिनवाणी मन्दिर एवं जिनवाणी संरक्षण केंद्र
- आचार्य समन्तभद्र आत्मचिंतन केंद्र
- धन्य मुनिदशा
- आचार्य कुन्दकुन्द प्रवचन मण्डप एवं शोध संस्थान
- भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन

मङ्गल प्रकल्प:

email : info@mangalayatan.com
website: www.mangalayatan.com

मूल्य 25/-